बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 148

मौद्रिक नीति की सीमाएं

भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) की मौद्रिक नीति समिति (एमपीसी) ने नीतिगत रीपो दर में 35 आधार अंक की कमी करके कई बाजार प्रतिभागियों को चौंका दिया। यह लगातार चौथा अवसर है जब दरों में कटौती की गई है। केंद्रीय बैंक ने चालू वर्ष के लिए वृद्धि के पूर्वानुमान को भी 7 फीसदी से कम करके 6.9 फीसदी कर दिया। एमपीसी का मानना है कि खुदरा मूल्य सूचकांक आधारित मुद्रास्फीति 4 फीसदी का स्तर पार नहीं करेगी। कम से कम अगले वित्त वर्ष की पहली तिमाही तक तो कतई नहीं। केंद्रीय बैंक ने दरों को 25 आधार अंक या इसके गुणक में समायोजित करने की परंपरा भी तोड़ दी है। इसका सिरा आरबीआई गवर्नर शक्तिकांत दास द्वारा इस वर्ष के आरंभ में वॉशिंगटन डीसी में दिए एक भाषण में तलाशा जा सकता है। उन्होंने कहा था, 'ऐसी स्थिति में जब केंद्रीय बैंक को लगे कि वह समायोजन कर सकता है लेकिन बहुत ज्यादा नहीं, तब वह 35 आधार अंक की कटौती कर सकता है। बशर्ते कि उसे लगे कि 25 आधार अंक की मानक कटौती बहुत कम होगी और 50 आधार अंक की कटौती बहुत अधिक।'

एमपीसी के निर्णय के पीछे भी ऐसी ही दलील है। बहरहाल, इस कदम पर चर्चा की जरूरत है। उदाहरण के लिए क्या केंद्रीय बैंक के कदम और अधिक अप्रत्याशित नहीं होते जाएंगे और इनसे लाभ किसे होगा? यह भी स्पष्ट नहीं है कि 15 आधार अंक की और अतिरिक्त कटौती ज्यादा कैसे होती क्योंकि अर्थव्यवस्था में कमजोरी के स्पष्ट संकेत नजर आ रहे हैं। इतना ही नहीं अगले वित्त वर्ष की पहली तिमाही तक मुद्रास्फीति के भी स्थिर रहने की आशा है और समेकित मांग को बढ़ावा देकर तथा निजी निवेश में उछाल के माध्यम से वृद्धि को गति देना केंद्रीय बैंक की शीर्ष प्राथमिकता है।

नीतिगत दर में कटौती के अलावा केंद्रीय बैंक ने मानकों को शिथिल कर बैंकों की पूंजी मुक्त करने का प्रयास किया है। इससे उन्हें गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को अधिक ऋण देने की इजाजत मिल सकेगी। इससे न केवल इन कंपनियों को मदद मिलेगी बल्कि व्यवस्था में ऋण का प्रवाह भी सुनिश्चित हो सकेगा। बहरहाल, बड़ा सवाल यह है कि परंपरा को तोड़ने से वृद्धि में नई जान फूंकने में किस हद तक मदद मिल सकेगी? संभव है कि चालू वर्ष में वृद्धि दर आरबीआई के अनुमानों की तुलना में काफी कम रहे। अमेरिका और चीन के बीच बढ़ते कारोबारी तनाव के बीच हाल के दिनों में वैश्विक पूर्वानुमान में काफी कमी आई है। यह अनिश्चितता आगे चलकर वैश्विक वृद्धि के पूर्वानुमान को भी नुकसान पहुंचाएगी।

वैश्विक स्तर पर प्रतिकूल हालात के अलावा अर्थव्यवस्था के आंतरिक कारक भी जल्द सुधार के संकेत नहीं दर्शा रहे। केंद्रीय बैंक मुद्रा की लागत कम करके अपनी भूमिका निभा रहा है। बहरहाल, केवल इतना करना पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि अकेले मौद्रिक नीति के बल पर हासिल होने वाले लक्ष्यों की भी सीमा है। इतना ही नहीं, अर्थव्यवस्था को कम नीतिगत दरों का भी पूरा लाभ नहीं मिल रहा है क्योंकि धीमी गति से पारेषण दिक्कत की वजह बना हुआ है। सरकारी क्षेत्र की भारी भरकम उधारी भी इसकी वजह है। सरकार ने सरकारी बैंकों को सलाह दी है कि वे दरों में कटौती का लाभ आगे बढ़ाएं। परंतु सरकार को अपनी भूमिका भी बढ़ानी होगी।

इस स्तर पर यह अहम है कि राजकोषीय प्रबंधन की नीतियों व्यापार और विनिमय दर प्रबंधन आदि का नए सिरे से आकलन हो। इसके अतिरिक्त भूमि और श्रम सुधारों को लचीला बनाने की आवश्यकता है। वैश्विक माहौल चुनौतीपूर्ण है लेकिन भारत प्रतिस्पर्धा बढ़ाकर अपनी स्थिति बेहतर कर सकता है।

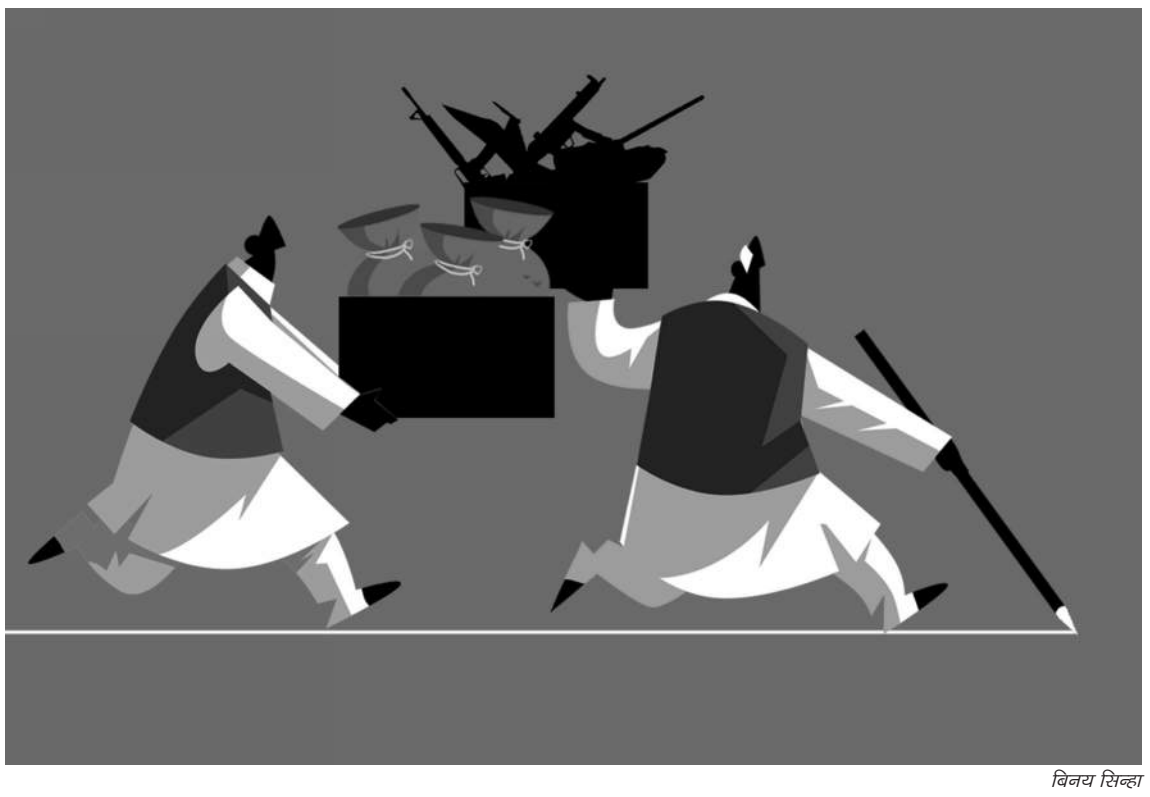

विनय सिन्हा

राजकोषीय संघवाद के समक्ष खतरा

जोखिम कम करने के लिए राष्ट्रपति 15वें वित्त आयोग की अनुशंसाओं पर राज्यों और केंद्र की प्रतिक्रिया मांग सकते हैं। इस संबंध में विस्तार से जानकारी प्रदान कर रहे हैं वाई वी रेड्डी

सरकार ने राष्ट्रपति के समक्ष यह प्रस्ताव रखा है कि 15वें वित्त आयोग का कार्यकाल एक माह बढ़ाया जाए और उससे रक्षा और आंतरिक सुरक्षा फंड के लिए ऐसा आवंटन करने का सुझाव देने को कहा जाए जो रद्द न हो।

आयोग के विचारार्थ विषय के अंतर्गत रक्षा और आंतरिक सुरक्षा के लिए संसाधनों का सुनिश्चित आवंटन करने का प्रस्ताव रखा गया है। आधिकारिक वक्तव्य में कहा गया है, 'संशोधनों के मुताबिक 15वें वित्त आयोग को यह भी परीक्षण करना चाहिए कि क्या आंतरिक सुरक्षा और रक्षा के लिए धन की व्यवस्था करनी होगी और अगर ऐसा किया जाएगा तो ऐसी व्यवस्था का क्रियान्वयन किस प्रकार किया जाएगा।'

आयोग के प्रस्तावित अतिरिक्त विचारार्थ विषय कई सवाल खड़े करते हैं। पहला, यह संविधान के अनुरूप राजकोषीय संघवाद, बजट एवं वित्तीय प्रबंधन की समग्र योजना में किस प्रकार उपयुक्त बैठती है? केंद्र सरकार द्वारा संग्रहीत कर को राज्यों के साझा करना होता है। इसे केंद्र और राज्यों के बीच बांटने के पहले राज्यों के संग्रह शुल्क की कटौती की जाती है। इन हिस्सों को केंद्र सरकार के समावेशी फंड तथा राज्यों के फंड में शामिल किया जाता है। वित्त आयोग की अनुशंसा के अनुसार सहायता अनुदान को केंद्र सरकार के संसाधनों से इतर आवंटित किया जाता है इसमें केंद्र सरकार की कर हिस्सेदारी शामिल होती है।

दूसरा, रक्षा क्षेत्र के लिए आवंटन पूरी तरह केंद्र की जवाबदेही है। दरअसल 14वें वित्त आयोग ने अतीत में अपर्याप्त आवंटन को रेखांकित करते हुए कहा भी है, 'इसी प्रकार इसके अनुमानों ने रक्षा राजस्व व्यय (वेतन समेत) में 2016-17 में 30 फीसदी बढ़ोतरी की बात कही। इसमें वेतन आयोग का प्रभाव शामिल है। इसके साथ ही शेष बचे वर्षों के दौरान 20 फीसदी की स्थिर वृद्धि की बात कही गई। (पैरा 6.35)'

'रक्षा मंत्रालय ने संसाधनों की जो मांग की है उसका काफी हिस्सा पूंजीगत व्यय की प्रकृति का है। यह हमारे आकलन के दायरे से बाहर है। उस राजस्व व्यय का पुनर्गठन आवश्यक है ताकि रक्षा तैयारी और रखरखाव समुचित ढंग से चल सकें। हमने रक्षा राजस्व व्यय-जीडीपी अनुपात को अनुमान की अवधि में स्थिर रखा, बजाय कि वृद्धि को धीमा होने देने के। यद्यपि अतीत में ऐसा हो चुका है। दूसरे शब्दों में कहें तो रक्षा राजस्व व्यय की दर को जीडीपी की दर के अनुरूप ही बढ़ने दिया गया, यह रक्षा राजस्व व्यय की अतीत की वृद्धि से काफी ऊंची है। (पैरा 6.36)।'

संविधान ने केंद्र सरकार को यह अधिकार दिया है कि वह रक्षा क्षेत्र को वास्तविक आवंटन करे। क्या वित्त आयोग जैसे संस्थान को ऐसे अहम क्षेत्र के लिए विशिष्ट आवंटन पर सुझाव देना उचित है? जबकि इसका असर व्यय आवंटन पर संसदीय नियंत्रण की भावना और सुरक्षा निहितार्थ की बदलती मांग पर भी होगा।

तीसरा, एक हद तक आंतरिक सुरक्षा राज्य सरकारों की भी जवाबदेही है क्योंकि कानून व्यवस्था उसका दायित्व है। हकीकत में जब केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल अथवा सीमा सुरक्षा बल जैसी सेवाएं राज्य सरकारों द्वारा मांगी जाती हैं तो उनका भुगतान भी वे अपने बजट से करती हैं। इसके अलावा जब उनकी सेवाओं का इस्तेमाल राज्य सरकारें चुनाव आदि के लिए करती हैं तो भी उनका भुगतान उन्हें करना होता है। जब केंद्र और राज्य के चुनाव साथ-साथ हो रहे हों तो खर्च को केंद्र और राज्य मिलकर साझा करते हैं। संक्षेप में कहा जाए तो केंद्र और राज्य दोनों को रक्षा और आंतरिक सुरक्षा की अपनी-अपनी तरह से आवश्यकता होती है। उम्मीद है कि 15वां वित्त आयोग परिचालन समस्याओं के अलावा इन बुनियादी मुद्दों पर भी विचार करेगा। चाहे जो भी हो वह हर विषय पर अनुशंसा देने के लिए बाध्य भी नहीं है। वित्त आयोग के विचारार्थ विषय को अंतिम रूप देने के लिए राज्यों के साथ चर्चा की प्रक्रिया में सरकारिया आयोग ने कहा,'किसी भी मशविरे के सार्थक होने के लिए आवश्यक है कि वह पर्याप्त हो।' इस खास विचारार्थ विषय का केंद्र-राज्य संबंधों पर गहरा असर होगा। क्या अतिरिक्त विचारार्थ विषयों से पहले राज्यों से मशविरा किया गया या किया जाएगा?

संविधान सभा ने अपनी चर्चा में कहा कि अनुशंसाओं को स्वीकार करने का काम संसदीय मंजूरी पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए क्योंकि अनुशंसाएं केंद्र और राज्य दोनों को प्रभावित करती हैं। चूंकि संविधान में हर अनुशंसा पर उठाए गए कदम के बारे में राष्ट्रपति की व्याख्या सदन में पेश करने का प्रावधान है इसलिए अनुमान है कि राष्ट्रपति अपने विशेषाधिकार का प्रयोग भारतीय गणराज्य के मुखिया के तौर पर करेंगे जिसमें केंद्र और राज्य दोनों शामिल हैं।

हालिया घटनाओं के अनुसार देखें तो वित्त आयोग की अनुशंसाओं को निर्णय लेने तक गोपनीय रखने और उठाए गए कदमों को संसद के समक्ष रखने के देश के राजकोषीय संघवाद के लिए अपने निहतार्थ हैं। जोखिम को कम करने के लिए राष्ट्रपति 15वें वित्त आयोग की रिपोर्ट को सार्वजनिक करने पर विचार कर सकते हैं और राज्य सरकारों तथा केंद्र की प्रतिक्रिया ले कर अंतिम नजरिया पेश कर सकते हैं।

इस संदर्भ में एक मुख्यमंत्री के सन 2012 के गणतंत्र दिवस के भाषण का उल्लेख करना उपयोगी होगा:

'राजकोषीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से संघीय ढांचे को नष्ट किया जा रहा है। लोकहित या जन अधिकार के नाम पर अधिक से अधिक फंड दिल्ली के हवाले किए जा रहे हैं। वित्त आयोग ने राज्यों की हिस्सेदारी कम की है और अधिसंख्या हिस्सा केंद्र के पास रखा है। केंद्र सरकार ने लोकलुभावन योजनाओं को पास किया है लेकिन उनके क्रियान्वयन के लिए राज्यों को धन नहीं दिया जा रहा। विकास के लिए पर्याप्त धन हासिल करना हर राज्य का अधिकार है। केंद्र कोई उपकार नहीं कर रहा।'

'मैं आज जो चिंताएं प्रकट कर रहा हूं, वे केवल बतौर मुख्यमंत्री नहीं बल्कि देश के आम नागरिक के रूप में भी हैं। ऐसा क्यों है कि तमाम राजनीतिक दलों के मुख्यमंत्री देश के संघीय ढांचे पर बार-बार हो रहे हमलों के प्रति अपनी चिंता एकजुट होकर प्रकट कर रहे? अब वक्त आ गया है कि केंद्र सरकार यह समझे कि राज्यों को समुचित फंड देने से केंद्र कमजोर नहीं होगा। राज्यों को भी केंद्र सरकार के साथ तालमेल करना चाहिए बजाय कि उसके अधीन बने रहने के। सहकारी संघवाद ही देश में मानक होना चाहिए।'

(लेखक आरबीआई के पूर्व गवर्नर हैं)

वैधानिक रूप से तय कार्यकाल में बदलाव से आएगी असुरक्षा

बाअदब

सोमशेखर सुंदरेशन

एक तय अवधि के लिए की गई नियामकीय नियुक्तियों को सरकारी विवेकाधिकार का इस्तेमाल करते हुए दूसरे कार्यकाल के लिए भी बढ़ा देने का एक बुरा चलन देखा जा रहा है

लोक सेवकों के कार्यकाल की सुरक्षा अब हमले की चपेट में आ चुकी है। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 में संशोधन करने का विधेयक संसद के इस अधिवेशन में पारित में हो चुका है। इस कानून ने देश भर के सूचना आयुक्तों को मिले दो मूलभूत वैधानिक संरक्षणों को खत्म कर दिया है। पहला, सूचना आयुक्त का कार्यकाल निश्चित था और दूसरा, उनके पारिश्रमिक को कानूनी सुरक्षा मिली हुई थी।

लेकिन सूचना का अधिकार संबंधी संशोधित कानून लागू होने के बाद केंद्र एवं राज्य के स्तर पर सूचना आयुक्तों के कार्यकाल एवं पारिश्रमिक का निर्धारण करने का अधिकार अब केंद्र सरकार के ही पास रह जाएगा। संशोधन के पहले एक सूचना आयुक्त को कम-से-कम पांच साल या 65 वर्ष की उम्र होने तक कार्यकाल मिलता था। इसी तरह आयुक्तों का पारिश्रमिक चुनाव आयोग के सदस्यों के समान स्तर पर होता था। वहीं राज्यों में नियुक्त सूचना आयुक्तों को मुख्य सचिव के समान लाभ मिलते रहे हैं। लेकिन अब केंद्र सरकार ही आयुक्त का कार्यकाल एवं वेतन संबंधी शर्तों को केंद्र एवं राज्य दोनों ही स्तर पर तय करेगी। इस वजह से देश भर में सूचना आयुक्तों की नियुक्ति से संबंधित पूरा राजनीतिक लाभ केंद्र सरकार को ही मिलेगा। इस संदर्भ में मौजूदा सरकार का रुख ही यह तय करेगा कि नागरिकों को सूचना का अधिकार लागू कराने में अगली सरकारें किस तरह काम करेंगी।

किसी भी लोक सेवक का कार्यकाल तय करना असल में उसके सरकारी पद को सुरक्षित करने का मूल है। अगर कानून कार्यकाल के सुरक्षित होने की इजाजत देता है तो पद पर नियुक्त अधिकारी हटाए जाने के भय से मुक्त होकर काम कर सकता है। हमारा संविधान उच्चतर न्यायपालिका के न्यायाधीशों का कार्यकाल संरक्षित करता है जिसके पीछे मकसद न्यायाधीशों की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करना ही है। दरअसल किसी न्यायाधीश को केवल महाभियोग प्रक्रिया के जरिये ही हटाया जा सकता है। न्यायाधीश का कार्यकाल संरक्षित होने के नाते ही न्यायिक नियुक्तियों में चयन का तरीका प्रमुख मुद्दा बन जाता है।

जब वर्ष 2017 में उच्चतम न्यायालय को यह पता चला था कि बाबरी मस्जिद विध्वंस के आरोपियों की सुनवाई चौथाई सदी बीतने के बाद भी चल रही है तो उसने दो साल के भीतर सुनवाई पूरी करने का आदेश देते हुए कहा था कि यह कार्य पूरा होने तक न्यायाधीश को कहीं भी स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। गत महीने जब शीर्ष अदालत को पता चला कि सुनवाई कर रहे न्यायाधीश जल्द ही सेवानिवृत्त होने वाले हैं तो उसने उनका कार्यकाल बढ़ाने का आदेश दे दिया ताकि वह नौ महीनों में अपनी सुनवाई पूरी करने पर ध्यान केंद्रित करें। इस समूचे प्रकरण के मूल में एक कनिष्ठ न्यायाधीश का कार्यकाल सुरक्षित करना था ताकि एक बेहद अहम सुनवाई को जल्द पूरा किया जा सके।

सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी प्रकाश सिंह की तरफ से दायर एक जनहित याचिका पर उच्चतम न्यायालय ने सभी पुलिस अधिकारियों को दो साल का तय कार्यकाल देने का फैसला सुनाया था। उसके बाद ही राज्य के पुलिस महानिदेशक से लेकर पुलिस थाना प्रभारी स्तर तक के अधिकारियों का कार्यकाल दो साल तय कर दिया गया। कई राज्य सरकारों ने इस निर्देश का उल्लंघन करने के तरीके अपनाने की कोशिश की लेकिन उच्चतम न्यायालय ने अभी तक उन्हें कामयाब नहीं होने दिया है।

हालांकि कुछ राज्यों ने गलत तरीके अपनाते हुए अपने वफादार पुलिस अधिकारियों को उनकी सेवानिवृत्ति करीब आने पर उन्हें महानिदेशक नियुक्त करने का सिलसिला शुरू कर दिया ताकि उन अधिकारियों को दो साल तक तयशुदा नियुक्ति मिल सके। सरकारों और उनके मंत्रियों एवं अधिकारियों के बीच इन सुधारों का विरोध करने का जबरदस्त निहित स्वार्थ होता है।

नियामकीय एजेंसियों के अधिकारियों को भी सुनिश्चित कार्यकाल मिलता रहा है। सबसे स्वतंत्र नियामकों में शामिल भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) के गवर्नर की नियुक्ति से संबंधित कानून में भी उम्र संबंधी प्रावधानों का जिक्र नहीं है। यही वजह है कि नियुक्ति के समय सरकार द्वारा तय किया जाने वाला गवर्नर का कार्यकाल इस अहम पद पर सरकार का नियंत्रण नहीं तो उसका प्रभाव कायम करने का अहम जरिया जरूर बन जाता है। एक तय अवधि के लिए की गई नियामकीय नियुक्तियों को सरकारी विवेकाधिकार का इस्तेमाल करते हुए दूसरे कार्यकाल के लिए भी बढ़ा देने का एक बुरा चलन देखा जा रहा है। इस प्रवृत्ति के चलते किसी अहम पद पर बैठा व्यक्ति खास तौर पर अपने कार्यकाल के अंतिम दिनों में खुद को बंधा हुआ महसूस करता है।

केंद्रीय बैंक का शीर्ष नेतृत्व अक्सर यह कहता रहता है कि हल्की-फुल्की मुद्रास्फीति शुरुआती गर्भावस्था की तरह है। यह कहावत कानून-निर्माण के मामले में भी उतना ही सच है। कानून के किसी क्षेत्र में कोई विध्वंसक कदम उठाया जाता है तो वह धीरे-धीरे अन्य क्षेत्रों में भी अपनी जगह बनाने लगता है। सूचना आयुक्तों के सुरक्षित कार्यकाल में किसी भी तरह का ह्रास कैंसर पैदा करने वाली ऐसी कोशिका बन सकता है जो किसी अन्य वैधानिक या नियामकीय निकाय की ताकत को नुकसान पहुंचाने वाला तरीका साबित हो।

(लेखक वरिष्ठ अधिवक्ता एवं स्वतंत्र परामर्शदाता हैं)

कानाफूसी

अध्यक्ष से रार

राज्य सभा में दो इलेक्ट्रॉनिक स्क्रीन लगी हुई हैं, जिनमें उस सांसद का नाम नजर आता है जो उस वक्त बोल रहा होता है। इसके अलावा उन्हें आवंटित समय, लिया गया समय और गंवाया गया समय नजर आता है। वहीं लोकसभा में केवल बड़ी स्क्रीन थी जहां कार्यवाही का सीधा प्रसारण देखा जा सकता है। इस सप्ताह से इस स्क्रीन पर भी सांसदों के नाम व उन्हें आवंटित समय दर्शाया जाने लगा। मंगलवार को जम्मू एवं कश्मीर पुनर्गठन विधेयक पर चर्चा के दौरान जब अपना दल की अनुप्रिया पटेल को भाषण चार मिनट में समाप्त करने को कहा गया तो उन्होंने विरोध किया। पटेल ने अध्यक्ष ओम बिरला से कहा कि वह उनके साथ निष्पक्षता नहीं बरत रहे हैं और उनके पहले वक्ता सुखबीर सिंह बादल को आठ मिनट का समय दिया गया जबकि उनके भी दो ही सांसद हैं। बिरला ने कहा कि पटेल उनके निर्णय को चुनौती दे रही हैं। उन्होंने आगे से ऐसा नहीं करने को कहा।

प्रथम पंक्ति में स्थान

संसद के अगले सत्र के लिए राज्यसभा में नई बैठक व्यवस्था बनाने की प्रक्रिया चल रही है। रेल मंत्री पीयूष गोयल और वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण, दोनों राज्यसभा सदस्य हैं। लेकिन कैबिनेट मंत्री होने के बाद भी उन्हें सदन की शुरुआती पंक्ति में स्थान हासिल नहीं है। परंतु अगले सत्र से उन्हें वह स्थान मिल जाएगा। भारतीय जनता पार्टी के नेता सुरेश प्रभु जो अब मंत्री नहीं हैं, वह प्रथम पंक्ति का स्थान छोड़ेंगे। इसके अलावा वाई एस चौधरी, जिन्होंने तेलुगू देशम पार्टी छोड़कर भारतीय जनता पार्टी का दामन थामा है वह भी शुरुआती पंक्ति में एक स्थान खाली करेंगे।

आपका पक्ष

प्रकृति संरक्षण के लिए लें संकल्प

नियमगिरि पहाड़ी की डोंगरिया कोंध जनजाति प्रकृति संरक्षण के मामले में विश्व में सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। पूरे देश में ऐसी अनेक जनजातियां हैं, जिन्होंने प्राकृतिक पारिस्थिकीय को नष्ट किए बिना अपने जीने के तरीके खोज रखे हैं। जंगल की सीमाओं में रहने वाले कुछ वंचित तबकों और छोटे किसानों के साथ ये जनजातियां ही भारत की जैव विविधता और खाद्य सुरक्षा की गारंटी दे सकती हैं। वर्तमान परिस्थितियों में प्रकृति अनेक प्रजातियों की विलुप्ति की आशंका से ग्रस्त है। ऐसे में वनवासियों और जनजातियों के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि ये हमें आसन्न प्राकृतिक विकटता से निपटने का समाधान दे सकते हैं। इस समस्या ने संपूर्ण विश्व को अपनी चपेट में ले रखा है। इसका समाधान हमें स्थानीय स्तर पर ही खोजना होगा। हमारी उष्णकटिबंधीय जलवायु ने हमें

प्रकृति के संरक्षण के लिए आम लोगों को जागरूक होने की जरूरत है

जैव विविधता से समृद्ध कर रखा है। लेकिन इससे होने वाले आर्थिक विकास, शहरीकरण, वनों की कटाई और अतिवृष्टि ने विश्व के कई अन्य स्थानों की तुलना में इसे अधिक खतरे में डाल दिया है। जाहिर है कि गहन खेती, वनों के दोहन और आवश्यकता से अधिक मत्स्य व्यापार ने भारत में जैव विविधता को असंतुलित कर दिया है। संयुक्त राष्ट्र का सुझाव है कि इस मानव भूल की सुधार के लिए वनवासियों, मछुआरों और किसानों के प्रकृति संबंधी पारंपरिक ज्ञान का उपयोग किया जाना चाहिए। इन स्थितियों में वनवासियों और जनजातियों को वनों से हटाने के बजाय उन्हें वहीं बसाकर प्रकृति का संरक्षण करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। ओडिशा और पूर्वोत्तर भारत ने इस दिशा में कदम उठाते हुए स्थानीय समुदायों को इस प्रकार की जिम्मेदारी सौंप दी है। आंध्र प्रदेश और तेलंगाना के किसान जीरो बजट प्राकृतिक कृषि अपनाने का संदेश दे रहे हैं। हो सकता है कि इस क्षेत्र की कृषि का यह मॉडल पंजाब के लिए अनुकूल न हो, लेकिन वहां के किसानों के पास कोई न कोई स्थानीय समाधान जरूर होगा। हमारा अस्तित्व इस पर ही निर्भर करता है कि हम नष्ट हो रही प्रकृति का संरक्षण किस प्रकार करते हैं। अगर इनके प्रमुख संरक्षकों को ही उजाड़ देंगे तो हमारा डूबना निश्चित है।

संगीता चौधरी, सीकर

सड़क की जगह रेलवे को तरजीह

राष्ट्रीय राजमार्ग निर्माण के लिए लाखों करोड़ों रुपये जुटाने का इंतजाम हो रहा है। लेकिन इतना बजट आवंटन या बाहरी निवेश रेलवे के नसीब में नहीं है। माल ढुलाई में किफायत और द्रुत गति में रेलवे का मुकाबला राजमार्ग शायद ही कर सके। राजमार्गों पर ईंधन खर्च होगा जबकि रेलवे के पास बिजली और सौर ऊर्जा दोनों विकल्प हैं। इसके अलावा जल प्रबंधन सभी राज्यों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। कहीं अतिवृष्टि तो कहीं सूखा पड़ रहा है। अतिवृष्टि वाले राज्य अनावृष्टि वाले राज्यों को रेल परिवहन द्वारा जलापूर्ति की संभावनाएं तलाश सकते हैं। राजमार्ग निर्माण में होने वाले खर्च की जगह क्या जल प्रबंधन को तरजीह नहीं दी जा सकती है। लिहाजा रेल मंत्रालय, जल शक्ति मंत्रालय, राजमार्ग मंत्रालय आदि मिलकर जल प्रबंधन का कौशल बढ़ा सकते हैं।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।